प्रवचन नं. ११ गाथा-१२, १३ शनिवार, दिनाङ्क २६-०३-१९६६
चैत्र शुक्ला ४, वीर संवत् २४९२

दस (गाथा) चली। ग्यारहवीं में कहा, उसके ऊपर शिष्य का प्रश्न है। क्या कहा था उसमें? देखो!

दोहा – मथत दूध डोरीनितें, दंड फिरत बहु बार।
राग द्वेष अज्ञान से, जीव भ्रमत संसार।।११।।

है न ऊपर? हिन्दी। जैसे डोरी द्वारा दण्ड को इस दूध आदि में मथते हैं न? तो दण्ड-रवैया बहुत घूमा करता है। ऐसे अनादि से अपने आत्मा का स्वरूप आनन्द और ज्ञान है, उसके भान बिना शुभ और अशुभराग, पुण्य और पाप का राग और उसमें मुझे सुख है – ऐसा मिथ्यात्वभाव, उससे अनन्त काल से परिभ्रमण कर रहा है। संसार में कहीं सुख नहीं है। आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा देखा, वह आत्मा तो अन्तर आत्मा, अन्तर आनन्दस्वरूप है। उस अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप को भूलकर, अनादि से पुण्य-पाप के भाव और वे मेरे – ऐसा मिथ्यात्वभाव (करके), उससे नये कर्म बाँधकर अनन्त काल से चौरासी में परिभ्रमण कर रहा है। समझ में आया? इसे कहीं सुख है नहीं; सुख तो आत्मा में है।

मुमुक्षु : सुख की जाति...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख की जाति एक है – ऐसा कहेंगे अभी। जड़ में कहीं सुख-दुःख नहीं है। भूल – कहा न? यह क्या कहा भूल? '**राग-द्वेष अज्ञान से**' भूल तो कही। अपना स्वभाव ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसे भूलकर शुभ-अशुभभाव विकार हो, उसमें मुझे ठीक है और उस पुण्य के फलरूप से यह धूल आदि मिले, यह स्वर्ग मिले और यह लक्ष्मी मिले, उसमें मुझे ठीक है—ऐसी मान्यता को भगवान, मिथ्यात्व कहते हैं।

मुमुक्षु : ऐसी मान्यता तो सभी जीवों की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सभी जीव (मानें) तो सब मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसा माने तब तक। इसके लिए तो प्रश्न है यहाँ। समझ में आया?

आत्मा की शान्ति आत्मा में है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने आत्मा में शान्ति अन्दर प्रगट करके पूर्णानन्द की प्राप्ति की है।

मुमुक्षु : अभी तो शान्ति छुप गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो! सुनो!! शान्ति छिप गयी है, यही कहते हैं, मूढ़ के कारण छिप गयी - ऐसा कहते हैं। भान नहीं कि यह आत्मा क्या और मैं किसमें मान रहा हूँ? अभी किसमें मान रहा हूँ।

मुमुक्षु : पहले प्रगट था...

पूज्य गुरुदेवश्री : था कब प्रगट? भान कब था? अनादि काल से निगोद के भव अनन्त किये। एकेन्द्रिय निगोद है न? एक शरीर में अनन्त जीव। यह आलू, शकरकन्द। क्या कहलाता है? आलू, काई, कन्दमूल में अनन्त जीव हैं। उसमें भी अनन्त बार रहा है। वहाँ से निकलकर अनन्त बार मनुष्य हुआ, देव हुआ, नारकी हुआ, पशु हुआ। अनन्त बार भव किये। एक पुण्य और पाप विकारी भाव को सुखरूप माना। उसके फल में बन्धन को भी ठीक माना कि पुण्य बन्धन होवे, वह मुझे ठीक और उसके फलरूप यह धूल आदि संयोग मिले, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी, (मिले, उसे ठीकरूप) माना है। बराबर होगा, बाबूभाई! यह सब पैसेवाले सुखी कहलाते हैं न? यह कहेंगे अभी।

मुमुक्षु : माने तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : माने तो। मानता है। माने तो सुखी कब थे? धूल में। माने, इसलिए सुखी हो जाए? जहर खाकर जीना चाहे तो जीना हो जाए?

आत्मा में आनन्द है, आत्मा का धर्म आत्मा में है। धर्म अर्थात् स्वभाव। अनन्त परमात्मा वीतरागदेव ने आत्मा का धर्म आत्मा में है (-ऐसा देखा है)। धर्म अर्थात् स्वभाव। ऐसा स्वभाव आत्मा का अन्तर (में-आत्मा में) न मानकर, शुभ-अशुभराग हो, विकार पुण्य-पाप का बन्धन और उसके फल में अपने को ठीक है - ऐसा अनादि से मान रहा है। कहो, समझ में आया?

मेरा हित, मेरा हित संवर-निर्जरा और मोक्षदशा है। वह तो मेरे अन्तर स्वभाव में से प्रगटे, ऐसी चीज है। वह कहीं बाहर से आवे, ऐसी नहीं है। ऐसा न-भान-उसका अभान

करके बाहर में कहीं सुख न के लिये परिश्रम कर रहा है। समझ में आया ? बाहर का त्यागी हुआ हो तो भी अन्दर के शुभराग और अशुभराग में मीठास मानता है, वह भी मिथ्यात्व का त्यागी नहीं, सम्यग्दर्शन का त्यागी है। समझ में आया ? आत्मा में होनेवाले शुभ और अशुभभाव में, अशुभभाव तो ठीक, परन्तु शुभभाव ठीक (अच्छा) है - ऐसा मानता है, वह सम्यग्दृष्टि का / सम्यग्दर्शन का उसने त्याग किया है; मिथ्यादर्शन का ग्रहण किया है। समझ में आया ? यह बात पहले की।

राग-द्वेष अज्ञान से, जीव भ्रमत संसार। अनन्त काल से अज्ञानपने आत्मा के भान बिना, मैं आत्मा सिद्धस्वरूप हूँ, सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा का उपयोग जानपना-दर्शन-ज्ञान-दर्शन, लक्षणवाला भगवान ने देखा। वे कोई यह (पुण्य-पाप के) भाव हों, वह इसका स्वरूप नहीं। देहादि तो मिट्टी, जड़, प्रत्यक्ष पर है। समझ में आया ? स्त्री, पुत्र, धूल तो फिर कहीं बाहर रह गये। उनमें मुझे मिठास और ठीक है - ऐसी मान्यता को यहाँ भगवान, मिथ्यादृष्टि / मिथ्यात्व कहते हैं। इस मिथ्यात्व के कारण फिर राग-द्वेष हुए। अनुकूलता में प्रेम, प्रतिकूलता में द्वेष; इष्ट वस्तु देखकर प्रीति और अनिष्ट देखकर अप्रीति (हुए)। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के मूल बीज राग-द्वेष की उत्पत्ति मिथ्यात्व में से हुई है। समझ में आया ? अब शिष्य का प्रश्न है।

यहाँ पर शिष्य पूछता है कि स्वामिन्! माना कि मोक्ष में जीव सुखी रहता है। किन्तु संसार में भी यदि जीव सुखी रहे तो क्या हानि है? - कारण कि संसार के सभी प्राणी सुख को ही प्राप्त करना चाहते हैं। जब जीव संसार में ही सुखी हो जायें तो फिर संसार में ऐसी क्या खराबी है? जिससे कि सन्त पुरुष उसके नाश करने के लिये प्रयत्न किया करते हैं? इस विषय में आचार्य कहते हैं - हे वत्स! -

विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिवाह्यते।
यावत्तावद्भवंत्यन्याः प्रचुरा विपदः पुरः।।१२।।

अर्थ - जब तक संसाररूपी पैर से चलाये जानेवाले घटीयंत्र[१] में एक पटली

१. आकस्मिकागत।

सरीखी एक विपत्ति भुगतकर तय की जाती है कि उसी समय दूसरी-दूसरी बहुत सी विपत्तियाँ सामने आ उपस्थित हो जाती हैं।

विशदार्थ – पैर से चलाये जानेवाले घटीयंत्र[1] को पदावर्त कहते हैं, क्योंकि उसमें बार-बार परिवर्तन होता रहता है। सो जैसे उसमें पैर से दबाई गई लकड़ी या पटली के व्यतीत हो जाने के बाद दूसरी पटलियाँ आ उपस्थित होती हैं, उसी तरह संसाररूपी पदावर्त में एक विपत्ति के बाद दूसरी बहुत सी विपत्तियाँ जीव के सामने आ खड़ी होती हैं।

इसलिए समझो कि एकमात्र दु:खों की कारणीभूत विपत्तियों का कभी भी अन्तर न पड़ने के कारण यह संसार अवश्य ही विनाश करने योग्य है। अर्थात् इसका अवश्य नाश करना चाहिए।।१२।।

दोहा – जब तक एक विपद टले, अन्य विपद बहु आय।
पदिका जिमि घटियंत्र में, बार बार भरमाय।।१२।।

गाथा - १२ पर प्रवचन

उत्थानिका - **यहाँ पर शिष्य पूछता है कि स्वामिन्! माना कि मोक्ष में जीव सुखी रहता है।** देखो! एक अपेक्षा से तुम्हारी में वस्तु-आत्मा के आनन्द, श्रद्धा, ज्ञान प्रगट करके आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा-सिद्धपद प्राप्त हो, वहाँ मोक्ष होगा, मोक्ष है, सुख है, ठीक है, मानो कि ऐसा कहते हैं। आत्मा में आनन्द है, उसका सम्यग्दर्शन द्वारा भान करके, सम्यग्ज्ञान द्वारा वेदन करके, सम्यक्चारित्र द्वारा स्वरूप में रमणता से सिद्धपद प्राप्त होता है (तो) मानो कि वहाँ मोक्ष में जीव सुखी रहता है; शिष्य इतना कहता है। है न उत्थानिका? **किन्तु संसार में भी यदि जीव सुखी रहे तो क्या हानि है?** यहाँ संसार में रहे हुए कुछ सुख मिले, तो क्या बाधा है तुम्हें? शिष्य, गुरु से प्रश्न करता है। पोपटभाई!

मुमुक्षु : बात समझने के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। ये सब तुम पैसेवाले सुखी हो - ऐसा दुनिया कहती है, यह और... थोड़ा भला सुखी है या नहीं?

१. एक यंत्रविशेष जो पानी उलीचने के काम आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानने से कहीं सुख हो जाता है धूल में ? पैसा कहाँ, स्त्री कहाँ, लड़का कहाँ, हड्डियाँ और माँस, वह तो चमड़ा है। स्त्री का शरीर चमड़ी, माँस और हड्डियाँ है। वहाँ सुख है ? सुख आत्मा में है – ऐसे भान बिना परवस्तु के फल में और पर में सुख मानकर चार गति में भटक रहा है। तब शिष्य ने कहा, मानो प्रभो! मोक्ष में भले सुख हो, परन्तु संसार में सुखी रहे तो क्या हानि है ?

कारण कि संसार के सभी प्राणी सुख को ही प्राप्त करना चाहते हैं। सुख की प्राप्ति करना चाहते हैं। **जब जीव संसार में ही सुखी हो जायें तो फिर संसार में ऐसी क्या खराबी है?** तो संसार में खराबी क्या है ? बाबूभाई! बराबर है ? यह देखो न! ये पाँच-पच्चीस लाख रुपये, वस्त्र ऐसे पहिनकर बैठे, खावे-पीवे और ऐसे मौज करे तो क्या दुःख है ? – ऐसा कहते हैं। यहाँ सुखी रहे तो तुम्हें क्या दिक्कत है ? – ऐसा शिष्य पूछता है। मोक्ष में सुख है... मानो होगा, परन्तु यहाँ सुखी रहे तो तुम्हें क्या दिक्कत है ?

मुमुक्षु : दो प्रकार का सुख आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो प्रकार का सुख आया। **जब जीव संसार में ही सुखी हो जायें तो फिर संसार में ऐसी क्या खराबी है? जिससे कि सन्त पुरुष उसके नाश करने के लिये प्रयत्न किया करते हैं?** देखो! **सन्त पुरुष उसके नाश करने के लिये प्रयत्न किया करते हैं?** इसका कारण क्या ? यहाँ कहाँ सुख नहीं ? और संसार का नाश किसलिए करना चाहता है ? सन्त धर्मात्मा, अपना आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि करके अन्तर में रमते हैं और पुण्य-पाप के भाव का नाश करना चाहते हैं। पुण्य-पाप का भाव नाश होने पर संसार का नाश करना चाहते हैं, तो संसार में सुखी होवे तो ऐसा किसलिए नाश करने को (मंथन) करना चाहिए ? पोपटभाई! सन्त पुरुष धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, वह आत्मा में अन्दर शुद्ध.. शुद्ध.. शुद्ध.. शुद्ध.. एकाकार होकर विकार के भावों का नाश करना चाहता है और वहाँ सुख होगा भले, परन्तु यहाँ सुख कहाँ नहीं, वह ऐसा मंथन करता है ? ऐसा पूछते हैं। **इस विषय में आचार्य कहते हैं – हे वत्स!** गुरु कहते हैं कि हे शिष्य!

विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिवाह्यते।
यावत्तावद्भवंत्यन्याः प्रचुरा विपदः पुरः।।१२।।

अर्थ – जब तक संसाररूपी पैर से चलाये जानेवाले.. क्या कहते हैं? 'संसार' शब्द से पुण्य और पाप मेरे – ऐसा मिथ्यात्वभाव। समझ में आया? उनसे इसका पैर। यह वह चक्र नहीं होता? अरहट.. अरहट.. यह कुएँ में (नहीं डालते)? ऊपर का पानी ऐसे निकले और नीचे से भरे। ऊपर से निकले और नीचे से भरे। घड़े, घड़े भरते हैं न? ऐसा पूरा चक्र (होता है)। छप्पनियाँ में बहुत थे। छप्पनियाँ में पानी कम था न? वह बहुत अरहट करते देखा था। तब दस वर्ष की उम्र थी न! पानी बहुत कम था, वे बेचारे गरीब मनुष्य (अरहट) करे। पानी यहाँ सामने ऐसे ठलवाय। ऊपर का खाली हो, और नीचे भरे।

संसाररूपी पैर से चलाये जानेवाले घटीयंत्र में एक पटली सरीखी एक विपत्ति भुगतकर तय की जाती है.. एक पटली जाती है, वहाँ दूसरी पटली आती है। एक आपदा जाती है, वहाँ दूसरी आपदा आती है। समझ में आया? एक विपत्ति जाए, वहाँ दूसरी विपत्ति तैयार ही होती है। समझे न? उसमें (दृष्टान्त में) जैसे पानी खाली हुआ ऊपर से तो नीचे से अनेक घड़े भरे वापस। ऊपर से ऐसे खाली हो, नीचे से ऐसे भरे।

तय की जाती है कि उसी समय दूसरी–दूसरी बहुत सी विपत्तियाँ सामने आ उपस्थित हो जाती हैं। एक आपदा (थी), जहाँ स्त्री को दुःख था, उसे जहाँ मिटाने गये, वहाँ लक्ष्मी गयी। जहाँ लक्ष्मी प्राप्त करने गये, वहाँ लड़का मर गया। लड़का जहाँ मर गया (और) जहाँ दूसरा लड़का हुआ, वहाँ शरीर में क्षय (टीबी) लागू पड़ा।

मुमुक्षु : यह तो किसी की बात है, सबको कुछ ऐसा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ कहते हैं, फिर कहेंगे कि नहीं हो तो आत्मा का इसे भान नहीं, इसलिए दुःखी है। यह तो बाहर की बाहर से बात करते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

विशदार्थ–पैर से चलाये जानेवाले घटीयंत्र को पदावर्त कहते हैं,.. पदावर्त –पैर से ऐसे घूमे। पैर रखते जाए और ऐसे–ऐसे घूमता जाए। **क्योंकि उसमें बार–बार परिवर्तन होता रहता है।** बारम्बार पानी निकले और भरे। **जैसे उसमें पैर से दबाई गई**

लकड़ी या पटली के व्यतीत हो जाने के.. दबायी तो नीचे गयी। **हो जाने के बाद दूसरी पटलियाँ आ उपस्थित होती हैं,..** ऊपर से आकर खड़ी रहे, ऐसा हो।

उसी तरह संसाररूपी पदावर्त में.. परिभ्रमण के काल में। **एक विपत्ति के बाद दूसरी बहुत सी विपत्तियाँ जीव के सामने आ खड़ी होती हैं।** समझ में आया? जहाँ एक मिटाने जाए, वहाँ दूसरी; दूसरी जाए, वहाँ तीसरी... होली चला ही करती है। बाहर में अनुकूल-प्रतिकूलता में सुख है नहीं। कहो, समझ में आया? फावाभाई! बराबर है? जहाँ पैसे हुए, वहाँ शरीर में रोग; रोग जाए, वहाँ दूसरी (विपत्ति आती है)। इसमें कहीं धूल में भी सुख नहीं है। मगनभाई! क्या होगा? आहा..हा..! कल्पना... कल्पना है, बापू! यहाँ आत्मा आनन्द है, उसे भूलकर धूल में और पैसे में और आपदा में और दुःख में सुख मानता है, बापू! तेरी दृष्टि में मिथ्यात्व है। समझ में आया? बाहर में कहीं सुख है नहीं। एक के बाद एक आपदा आया ही करती है। बहुत विस्तार इसमें लेखन में नहीं किया है। इतना अर्थ ही साधारण किया है। समझ में आया? पैसा जहाँ आवे, वहाँ कोई उलझन डाले। कहो, बराबर होगा? मलूपचन्दभाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! चले गये। वहाँ उसमें से ऐं... ऐं.. हो जाता है। देखो न, पूछो उसके लड़के को, पूछो तो सही। एक महीने से तो अभी पलंग पर पड़ा था। उसके पास दो करोड़ रुपये हैं। पूनमचन्द। वह मिल नहीं लेता था। तुम्हारे अहमदाबाद में उसका लड़का है। धूल में भी सुख नहीं है। पड़ा था पलंग पर ऐं... ऐं... करता। कुर्सी में बैठा हो तो अन्दर कल्पना, होली सुलगती हो। वहाँ कहाँ सुख था धूल में? व्यर्थ में मूढ़ (सुख) मानकर बैठा है। समझ में आया?

एक टले, वहाँ दूसरी (आवे)। जहाँ पैसा हो, वहाँ कहे, मेरे कम और इसे अधिकर। वापस यह होली सुलगावे। मेरे पास पाँच, दस लाख, बीस लाख और उसके पास पचास लाख है। चालीस लाख का टोटा। हम दोनों समान भागीदार, हमनें समान पाँच-पाँच लाख रुपये बाँटे। उसे दो वर्ष में पचास लाख हो गये और मुझे तो अभी पाँच लाख ही है। मुश्किल से ब्याज निकालकर इतना खायें और इतना रहा। उसे हो गये पचास

लाख। (मेरे) पैंतालीस लाख की कमी है। खाध समझ में आया? ऐसे खाध भले न मिले। खाध दो प्रकार के। एक ऐसे पचास लाख की पूँजी कहलाती हो और होवे दस लाख की। ऐसे भी होते हैं न अभी? बहुत होते हैं बहुत देखे हैं और हमें तो सब खबर है। पचास लाख कहलाता हो, अन्दर दस लाख हों। चालीस लाख की कमी हो, परन्तु ऐसे के ऐस टके के ब्याज से, बारह आने ब्याज से (चलता हो)। अभी तो और महँगा ब्याज हो गया, परन्तु पहले टके के ब्याज से निभाते, हों! अन्दर खाधवाले। ऐसे आठ आने मिलते हों। टके-टके के ब्याज से ले। अभी तो बहुत महँगा (हो गया)। यह तो जब तीन आने बैंक देता था, न, तब टके के ब्याज की बात है। समझे न? यह तो सब देखा है, और एकान्त में हमारे पास सब कितने ही आते हैं। इस प्रकार टके ब्याज से लिया, परन्तु अब कुछ पूरा पड़ता नहीं है और यह फेल होगा दो दिन बाद। एक पाँच सौ रुपये लेने आवे, दुकान में नहीं, महाराज! कुछ (करो)। परन्तु यहाँ हमारे पास पैसा है?

मुमुक्षु : दुखिया लोग तो आपके पास ही आवे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ है? बापू! हमारे पास पैसा यहाँ है? आहा..हा..! कल ही एक आये थे। पन्द्रह वर्ष से हम दु:खी हैं। बापू! क्या है? यहाँ तो आत्मधर्म की बात है, बापू! समझ में आया? यहाँ कोई पैसे-बैसे की बात नहीं है। आत्मा का धर्म वीतराग कहते हैं, उसे पहिचानो और आत्मा में शान्ति है, इसके बिना तीन काल में कहीं शान्ति नहीं है। यहाँ यह बात है, बापू! यह मन्त्र है। बाकी कोई मन्त्र-बन्त्र पैसा मिले और तुम्हारे क्या कहलाता है? फर्क और फर्क और धूल फर्क... मूर्ख सब एकत्रित होकर... वे देनेवाले मूर्ख और लेनेवाले मूर्ख। पूर्व के पुण्य बिना एक भी पाई तीन काल में नहीं मिलती। 'हुनर करे हजार भाग्य बिन मिले न कोडी।'

देखो न! अभी यह भ्रमणा नहीं मुम्बई में? कौन कहता था? भाई! कोई ऐसा साईंबाबा आया है... चल निकला है व्यक्ति। मुसलमान और जैन भी चल निकले हैं। पागल तो कोई पागल।

मुमुक्षु : बनियें तो होशियार होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनियों को भान नहीं होता। बनिया कहना किसे? वह मुसलमान,

गृहीत मिथ्यादृष्टि जीव, माँस खाता होगा। अब कौन जाने सब ऐसे बुरे साथियों ने चढ़ाये हैं... हजारों लोग, पच्चीस-पच्चीस हजार लोग (जाते हैं)। वह दस-पाँच मिनिट दर्शन दे। ओहो..हो..! चल निकला है, कल पोपटभाई कहते थे। अभी आठ दिन से है, हों! दो दिन हुए, अभी है कहते हैं।

अरे! भाई! दु:खी यह दुनिया और उसमें कोई देनेवाला निकल जाए, धूल भी दे - ऐसा नहीं व्यर्थ में। मूढ़ मिथ्या भ्रम में पड़े हैं। या तो वह 'जलाराम' दे दे और या वह बाबा दे दे और या सांईबाबा दे दे। मूढ़ जीव की मूढ़ता, उसका माप नहीं मिलता, इतना पाप का मिथ्यादृष्टिपना है।

यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि सुन तो सही! यह पूर्व के किसी पुण्य के कारण से सामग्री मिले और उसमें तू सुख माने तो एक पुण्य जहाँ घटा, वहाँ दूसरी आपदा आयेगी, तीसरी आपदा आयेगी; क्योंकि जगत में तो पुण्य-पाप के फल एक के बाद एक आया करते हैं। आत्मा पुण्य-पाप रहित चीज़ है, उसका जब तक भान और पहिचान नहीं करे, तब तक तेरे दु:ख मिटेंगे नहीं। समझ में आया? कहो, बाबूभाई! सब बहुत कि यहाँ महाराज के पास पैसे बहुत आते हैं। यहाँ हमारे पैसा... हमारे पास तो यह आत्मा है। समझ में आया? कहो, विमलचन्दजी! कैसे बसन्तलालजी क्या? आहा..हा..! यहाँ कहते हैं कि भाई!

इसलिए समझो कि एकमात्र दु:खों की कारणीभूत विपत्तियों का कभी भी अन्तर न पड़ने के कारण.. देखो! एक विपत्ति में दूसरी और दूसरी में तीसरी और तीसरी में चौथी और चौथी में चला ही करती है, उसमें कहीं सुख नहीं है। **यह संसार अवश्य ही विनाश करने योग्य है।** संसार नाश करने योग्य है - ऐसा यहाँ तो सिद्ध करते हैं। समझ में आया? संसार शब्द से (आशय यह है कि) जिससे पुण्य-पाप फले - ऐसे जो शुभाशुभभाव, वह संसार है। उसका नाश करना ही योग्य है। समझ में आया? जब तक पुण्य और पाप करेगा, तब तक उसके फल अनुकूल और प्रतिकूल मिलेंगे और परिभ्रमण किया करेगा। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं कि यह आत्मा इन पुण्य-पाप के फलरहित, बन्धन रहित और पुण्य-पाप के भावरहित है। उसका भान करके संसार का नाश हो; इसके अतिरिक्त दु:ख के नाश का कोई उपाय नहीं है। आहा..हा..!

समझ में आया ? अन्दर में कुछ होली सुलगती हो और बाह्य में ऐसा दिखता हो और अन्दर में खराबी कुछ हो और कुछ हो, किसी को कुछ हो। मोहनभाई ! यह किसी को कुछ न होवे तो भी इन पुण्य-पाप को अपना माननेवाला आकुलता को, दुःख को, मिथ्यात्व को संवन करता है, लो ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा की रिद्धि चैतन्यमूर्ति 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'—ऐसा आत्मा का स्वरूप अन्दर भरा हुआ आनन्द से, परमेश्वर-साक्षात् परमेश्वर स्वरूप ही आत्मा है। आहा..हा.. ! ये परमेश्वर परमात्मा केवलज्ञानी होते हैं, कहाँ से होते हैं ? कहीं बाहर से होते हैं ? इस अन्दर में पड़ी हुई शक्ति का विकास करने से परमात्मा होते हैं, केवलज्ञानी परमात्मा (होते हैं)। बाबूभाई ! यह अन्तर तत्त्व क्या है, उसे जानना नहीं, उसे देखने, प्रतीति करने, पहिचान करने की दरकार करना नहीं और बाहर से यह करूँगा और धूल मिलेगी और यह मिलेगा... होली मिलेगी चार गति में भटकने की। पोपटभाई लो !

यहाँ तो कहते हैं, **एकमात्र दुःखों की कारणीभूत विपत्तियों का कभी भी अन्तर न पड़ने के कारण..** विपत्ति तो आया ही करती है। जैसे वह ऊपर से खाली करे और नीचे से भरे - ऐसे कोई एक (विपत्ति) जाए वहाँ दूसरी, दूसरी जाए वहाँ तीसरी। अब यह विकल्प का जाल हो, लो न ! विकल्प का जाल। जैसे पुणी सांध्य ही करे, पुणी का डोरा एक के बाद एक यह राग ऐसे करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... विकल्प... विकल्प.. विकल्प... पुण्य-पाप, राग-द्वेष के विकल्प की ज्वाला तो सुलगता ही रहता है, वह दुःख है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? प्रतिकूल संयोग दुःख नहीं, प्रतिकूल संयोग दुःख नहीं, निर्धनता दुःख नहीं, रोग दुःख नहीं। वह मुझे हुआ - ऐसी प्रतिकूलता की मान्यता इसे दुःखरूप होती है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा सुख है और दुःख भी किसने कहा ? सुना क्या यह अभी तक ? रोग सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं। वह तो जड़ की दशा है।

यह जड़ परमाणु मिट्टी, धूल तो यह अजीवतत्त्व है। भगवान ने नवतत्त्व कहे, उनमें यह अजीवतत्त्व है। नवतत्त्व कहे न, भगवान ने—जीव, अजीव,पुण्य, पाप, आस्रव,

संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। ऐसे यह अजीव मिट्टी तत्त्व, यह जड़ है। यह सब देखो! अजीव पुद्गल है। अब उसमें कोई रोग हुआ, वह तो जड़ की दशा है। उसमें आत्मा को दुःख कहाँ से आया? बस! मूढ़ मानता है कि मुझे रोग और इसे निरोग। ऐसे भाग पाड़कर मिथ्यात्वभाव में दुःख मान रहा है। समझ में आया? आहा..हा..! और पैसे से सुख, वह मूढ़ है। शरीर निरोग मेरा बस ऊँट जैसा। समझे न? ढाई सेर के पाँच लड्डू खा जाए, सेर-सेर घी पिलाये हुए। परन्तु वह है क्या? ऐ... मलूपचन्दभाई!

मुमुक्षु : अब नहीं खाते।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं खाते? पहले खाते होंगे। क्यों वृद्ध नहीं आये वापस आज? ठीक! दोपहर को आते हैं, ऐसा न! क्या समझ में आया? एक जटुभाई तीन-तीन लड्डू खाते, इतने-इतने। जटुभाई, अभी फिर जब यह हुआ न? गेहूँ, वे खाणिया गेहूँ। खाणिया गेहूँ समझ में आता है? 'भाल' में गेहूँ बहुत होते हैं, और वे बैल खाये। बैल खाये, इसलिए वे छाण में निकाल डाले, पूरे के पूरे निकलें सूखे जैसे। फिर उसका रोग हो गया होगा। जटुभाई को। वैद्य बड़े हुए, लो न! इतने-इतने तीन लड्डू ठीक से चढ़ाते थे। वे अभी उन गेहूँ की रोटी खाते हैं। खाणिया गेहूँ, हों! बैल की छाण में से निकले हुए। ब्राह्मण जटुभाई! कहा - यह? यह तो हरिजन ने इकट्ठे किये हों और फिर धो डाले। भाल में बहुत गेहूँ होवे और फिर अलग रखे न? बहुत गेहूँ पके। इस वर्ष भी बहुत पके हैं। फिर वह बैल खाये उस छाण में, कस अन्दर रह जाए, बाकी का निकल जाए। फिर छाण में निकले, वे हरिजन घर ले जाएँ, साफ करके थैलियाँ भर लें, फिर ऐसे हों, जिन्हें पचता न हो, वैसे ये ले जाएँ। मीठी पेशाबवाले। धूल में भी सुख, सुख नहीं है, परन्तु कहीं का कहीं कल्पना करके मानता है। इतना तो सुख है, हों!

मेरे साले की बहू बहुत होशियार है। ठीक अब वह। कहाँ का कहाँ लगाया! परन्तु तुझे क्या? मलूपचन्दभाई! मेरे साले का लड़का ऐसा होशियार, बिलायत जाकर पच्चीस हजार की आमदनी, महीने की पच्चीस हजार की। परन्तु उसमें भी तुझे क्या है? राग करता है, वह तुझे दुःख है। उसके लड़के तो ऐसे होशियार, आहा..हा..! मूढ़ है। बाहर की चीज़ में सुख मानता है, उसे तो वीतरागदेव मिथ्यात्वभाव कहते हैं। वीतराग परमात्मा, जिसमें

सुख नहीं, उसमें सुख माने, उसे विपरीत मिथ्यादृष्टि कहते हैं। फिर भले चाहे जो दया, दान, और व्रत, भक्ति को करता हो तो दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया? कैसे होगा? अरे! शरीर ऐसा हो परन्तु यह बसन्तीलालजी जैसा ऐसा श्वेत, रूपवान, लट्ठ जैसा, मक्खन जैसा (हो), लो! वह सुख होगा या नहीं? अरे! कीड़े पड़े वहाँ इसमें। आहा..! अरे! पैर में ऐसा दुखता है, सबाका मारता है। परन्तु अच्छा दिखता है न? भाई! यह तुझे खबर नहीं पड़ती। ये जोड़, ऐसे जोड़ दुखते हैं, ऐसा कहते हैं न लोग? यह एक के बाद एक विपदा संसार में पड़ी है, इसमें सुख कब है?

संसार अवश्य नाश करनेयोग्य है। संसार अर्थात्? है न लाईन? भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है। उसका अन्तर अनुभव—दृष्टि-ज्ञान करके, पुण्य-पाप के भाव संसार हैं, यह शुभ-अशुभभाव संसार है, इसका नाश करने से ही छुटकारा है। इसके अतिरिक्त कहीं तीन काल में सुख नहीं है। समझ में आया? देखो न! यह यहाँ मकान लिया, उसे अभी वह करना, अभी लेना भी नहीं आता... उलझे है अभी कितने ही। निपटा नहीं। महीना-डेढ़ महीना वहाँ क्या कहलाता है वह? फलाना, ढीकना। क्या दस लाख हुए और सौ लाख हुए। परन्तु उसमें आत्मा को क्या हुआ? होली सुलगा ही करती है, एक के बाद एक। मगनभाई! आहा..हा..!

दोहा – जब तक एक विपद टले, अन्य विपद बहु आय।
पदिका जिमि घटियंत्र में, बार बार भरमाय।।१२।।

यह पैर में खाली दबावे वहाँ ऊपर का खाली हो और नीचे का भरे, ऐसे एक पुण्य को जहाँ दबावे, वहाँ जरा बाहर आवे, वहाँ फिर दूसरा पाप हो, वहाँ प्रतिकूलता आवे। पाप और पुण्य का चक्र अनादि से चला आ रहा है। पुण्य का फल घड़ीक में आवे, घड़ीक में पाप के आवें। ऐसे के ऐसे चौरासी के अवतार में पुण्य और पाप करके चौरासी के अवतार (किये)। स्वर्ग में गया तो भी दुःख है, धूल भी वहाँ सुख नहीं है। वहाँ करोड़ों देवांगनाएँ हैं। वह क्या है? धूल में सुख है वहाँ? यह कल्पना करता है कि यह इन्द्राणियों में सुख है। वह कल्पना, यही इसका दुःख है। समझ में आया? कोई कल्पना (से) माने कि आहाहा! इसे तो इन्द्राणियाँ सुखी। ऐसे सम्पदा देवलोक की देखो। सुधर्म देवलोक का

बत्तीस लाख विमान का स्वामी शकेन्द्र इन्द्र है। भगवान का जन्म आदि होता है, तब आता है न महोत्सव करने, भगवान को मेरुपर्वत पर ले जाने। बत्तीस लाख विमान का स्वामी, करोड़ों इन्द्राणियाँ और दो सागर का आयुष्य। (उसका) विषय में लक्ष्य जाता है, वह आकुलता और दुःख है। आहाहा!

भगवान अनाकुल आनन्द का भरपूर भण्डार। अरे! घर का बर्तन छोड़कर पर में चाटने जाता है, ऐसा कहते हैं। लोग नहीं कहते? ऐ.. घर में स्त्री अच्छी और यह तू उस भंगिन को जहाँ-तहाँ जूठन चाटने जाता है। इसी प्रकार यहाँ परमात्मा कहते हैं कि अरे! तेरा भरा बर्तन तो अन्दर में है न, भाई! वह अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान तू है। और उसे चाटने जाता है - धूल और राग तथा द्वेष में सुख को चाटने जाता है। यह भरा घर छोड़कर तू कहाँ जाता है? समझ में आया? वह तो बाहर की बात है, व्यभिचारी होवे तो उसे कहते हैं न? ऐ.. घर में स्त्री, वह पद्मिनी जैसी स्त्री, खानदानी लड़की, उसे छोड़कर जहाँ-तहाँ वेश्या के यहाँ घूमता है। कौन है तू? समझ में आया? भानरहित। इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं। अरे! आत्मा में आनन्द प्रभु है न! तुझमें अन्दर भरे बर्तन पड़े हैं (अर्थात्) तू शान्ति का सागर है प्रभु! अन्दर में तूने नजर नहीं की। आहाहा! तुझे अन्तर आनन्द का विश्वास नहीं आता। आत्मा आनन्द से भरपूर तत्त्व है। कुछ आनन्द बाहर से, कहीं से नहीं आता। आहाहा! अरे! ऐसे भरे भगवान को देखता नहीं और जिसमें पुण्य-पाप और जिसके फल में जरा भी गन्ध भी सुख नहीं, वहाँ मूढ़ मिथ्यादृष्टिरूप से (सुख) मानता है। अवश्य यह संसार नाश करनेयोग्य है। समझ में आया?

संसार अर्थात् यह स्त्री-पुत्र ऐसा नहीं। स्त्री-पुत्र बेचारे वे तो पर हैं। वे कहाँ (संसार है)? तेरे आत्मा में सुख है, आनन्द है, उसे भूलकर '**संसरणं इति संसारः**' उसमें से हटकर पुण्य-पाप के भाव (और) मिथ्यात्वभाव किया, उसका नाम भगवान संसार कहते हैं। समझ में आया? स्त्री, पुत्र, बेचारे पर हैं। वे कहाँ घुस गये थे यहाँ? तू बैठा हो और वे चले जाएँ तथा वे बैठे हों और तू चला जाए। वहाँ कहाँ तुझमें वे घुस गये हैं? समझ में आया?

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी साक्षात् तीर्थंकर अनन्त हो

गये। वर्तमान में विराजते हैं - महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकरदेव,.. आता है न? बाबूभाई! या नहीं? बीस विहरमान वर्तमान में विराजते हैं, मनुष्यरूप से अभी हैं। पाँच सौ धनुष्य की देह है, करोड़ पूर्व की आयुष्य है। बीस तीर्थंकर विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं। उन भगवान के मुख में (वाणी में) ऐसा आता है कि भाई! तुझमें आनन्द है न भाई! उस आनन्द को भूलकर यह बाहर में कहाँ भटकता है? ये स्त्री-पुत्र तेरा संसार नहीं है। तेरा संसार तेरे स्वभाव को चूककर पुण्य-पाप के भाव और उनमें भ्रमणा की है, वह तेरा संसार है। आहाहा! समझ में आया? '**संसरणं इति संसारः**'

सच्चिदानन्द प्रभु, सिद्धस्वरूप आत्मा का। सत् अर्थात् शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का कन्द आत्मा है। उसमें से, यह पर में सुख, पर में दुःख, शरीर ठीक होवे तो ठीक, न होवे तो ठीक नहीं - ऐसी जो भ्रमणा / मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव (होते हैं), उन्हें भगवान संसार कहते हैं। नहीं तो वे कहें, स्त्री सुख छोड़ा तो संसार छोड़ा। धूल में भी छोड़ा नहीं, अब सुन न! संसार किसे कहना, तुझे खबर भी नहीं है। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... यह भुलानेयोग्य है न, बापू! यह वस्तु ही ऐसी है। यह तो वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का मार्ग है। जिसे इन्द्र स्वीकार करते हैं, गणधर अनुभव करते हैं। समझ में आया? यह कहीं कोई ऐरे-गैरे का मार्ग नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर, अनन्त तीर्थंकर हुए, वर्तमान में विराजते हैं, अनन्त तीर्थंकर होंगे। भरत में होंगे, ऐरावत में होंगे, महाविदेह में तो विराजमान हैं। आहाहा!

भाई! तू भगवान को भूला और भ्रमणा में पड़ा, कहते हैं। तेरे भगवान की महिमा, वीतराग कहते हैं कि वाणी से पूरी न पड़े, ऐसा तू है, भाई! ऐसे आत्मा में सम्यग्दर्शनरूपी धर्म प्रगट किये बिना पुण्य-पाप के भाव में लाभ मानना मिथ्यात्वभाव है। अनुभूति भगवान आत्मा की... आहाहा! शुद्धस्वरूप, अनाकुल आनन्द, उसमें अन्तर एकाकार होकर आत्मा के आनन्द का अनुभव करना, इसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन / धर्म कहते हैं। समझ में आया? यह धर्म प्रगट हुए बिना संसार का-मिथ्यात्व का नाश नहीं होता। कहो, समझ में आया? संसार अवश्य... लो!

जब तक एक विपद टले, अन्य विपद बहु आय। पदिका जिमि घटियंत्र में, बार बार भरमाय। स्वर्ग का देव। कुछ पुण्य किया हो, आत्मा के भान बिना, स्वर्ग का देव (होवे) मरकर एकेन्द्रिय में जाए। समझ में आया? दूसरे देवलोक का इन्द्र तो नहीं, वह तो सम्यक्त्वी है। इन्द्र है और वह तो समकिती है। इन्द्र और इन्द्राणी दोनों समकिती हैं। एकावतारी हैं। एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। अभी शकेन्द्र सौधर्म देवलोक में है? परन्तु उसके दूसरे देव जो दो-दो सागर की स्थितिवाले हैं, वे मरकर ढोर में-एकेन्द्रिय में (भी) जाते हैं। आहाहा! यहाँ पुण्य किया हो—दया, दान, व्रत, भक्ति, शुभभाव, परन्तु माना हो उसमें धर्म। आत्मा अन्तर से राग से भिन्न है, उसका भान नहीं होता। समझ में आया?

अथवा वहाँ (दूसरे देव कहे), अब आयुष्य पूरा हुआ। माला मुरझायी, माला मुरझायी। क्या है? भाई! देव! मरण का अवसर आया। कहाँ? सब मरते हैं यहाँ तो। सब देव बड़े असंख्य अरब वर्ष रहकर। तुम कहाँ जाओगे? मैं कहाँ जाऊँगा? तिर्यंच में या मनुष्य में। ऐसे सुख छोड़कर यह मनुष्य में नौ महीने उल्टा लटकेगा? रोता है कुदेव। आत्मज्ञानरहित, भानरहित पुण्य करके गया, उसकी बात है। समझ में आया? वह रोता है, हों! ऐसा। अरे! ये इन्द्राणियाँ, यह देव, यह छोड़कर मुझे जाना? इस माता के गर्भ में नौ महीने उल्टा लटकूँ? श्वास भी लिया न जाए। अर र! यह विचार करते-करते ऐसा हो, अरे! इसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय में जाएँ तो ठीक। लटकें तो नहीं। ऐसा भगवान कहते हैं, हों! ऐसा विचार करे और मरकर एकेन्द्रिय में जाए। पानी में जाए, फूल में जाए (और) पृथ्वी में जाए। एकेन्द्रिय में अवतरित हो। कहाँ देव और कहाँ एकेन्द्रिय? संसार में तो ऐसा ही है, एक आवे और जावे। वहाँ कहाँ धूल में भी नहीं कुछ व्यर्थ का। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ चक्रवर्ती का छह खण्ड का राज हो। लो! खम्मा अन्नदाता! सोलह हजार देव सेवा करते हों। जहाँ पूरा हुआ कि दूसरे क्षण में सातवाँ नरक। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती (का) आता है न? ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, बारहवाँ अन्तिम चक्रवर्ती। बड़े सोलह हजार देव तो सेवा करे। हीरा का... क्या कहलाता है सोने का? पलंग, पलंग। हीरे का पलंग। एक-एक हीरे की कीमत करोड़ की हो। वह अन्तिम समय में कुरुमति.. जा सातवें नरक में।

रौरव नरक में पड़ा है अभी, तैंतीस सागर की स्थिति। बापू! यह तो संसार का पर्दा आया (और) जाता है। एक पर्दा गिरता है और दूसरा आता है। दूसरा जाता है और तीसरा आता है। वहाँ कहाँ धूल में सुख था। स्वर्ग और नरक सब दु:खरूप हैं। आहाहा! यह यहाँ बात करते हैं, हों!

फिर शिष्य का कहना है कि भगवन्! सभी संसारी तो विपत्तिवाले नहीं हैं, बहुत से सम्पत्तिवाले भी दिखने में आते हैं। इसके विषय में आचार्य कहते हैं –

दुरर्ज्येनाऽसुरक्षेण नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जन: कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिषा।।१३।।

अर्थ – जैसे कोई ज्वरवाला प्राणी घी को खाकर या चिपड़ कर अपने को स्वस्थ मानने लग जाय, उसी प्रकार कोई एक मनुष्य मुश्किल से पैदा किये गये तथा जिसकी रक्षा करना कठिन है और फिर भी नष्ट हो जानेवाले हैं, ऐसे धन आदिकों से अपने को सुखी मानने लग जाता है।

विशदार्थ – जैसे कोई एक भोला प्राणी जो सामज्वर (ठंड देकर आनेवाले बुखार) से पीड़ित होत है, वह बुद्धि के ठिकाने न रहने से–बुद्धि के बिगड़ जाने से घी को खाकर या उसकी मालिश कर लेने से अपने आपको स्वस्थ–निरोगी मानने लगता है, उसी तरह कोई–कोई (सभी नहीं) धन, दौलत, स्त्री आदिक जिनका कि उपार्जित करना कठिन तथा जो रक्षा करते भी नष्ट हो जानेवाले हैं – ऐसे इष्ट वस्तुओं में अपने आपको 'मैं सुखी हूँ' ऐसा मानने लग जाते हैं, इसलिए समझो कि जो मुश्किलों से पैदा किये जाते तथा जिनकी रक्षा बड़ी कठिनाई से होती है, तथा जो नष्ट हो जाते, स्थिर नहीं रहते, ऐसे धनादिकों से दु:ख ही होता है, जैसा कि कहा है – 'अर्थस्योपार्जने दु:खं'

'धन के कमाने में दु:ख, उसकी रक्षा करने में दु:ख, उसके जाने में दु:ख, इस तरह हर हालत में दु:ख के कारणरूप धन को धिक्कार हो।'

दोहा – कठिन प्राप्त संरक्ष्य ये, नश्वर धन पुत्रादि।
इनसे सुख की कल्पना, जिमि धृत से ज्वर व्याधि।।१३।।

गाथा - १३ पर प्रवचन

फिर शिष्य का कहना है कि भगवन्! सभी संसारी तो विपत्तिवाले नहीं हैं,.. कितने ही तो दिखते हैं बेचारे। पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ पूँजी, स्त्री अच्छी, लड़के अच्छे, मकान-बँगले दस-दस लाख, बीस-बीस लाख के मकान। सिर पर पंखा घूमता हो ऐसे.. ऐसे.. ऐसे.. चूरमे का लड्डू खाता हो, श्रीखंड, पूड़ी और अरबी के भुजिये गरम-गरम ऐसे खाता हो। सब दु:खी हैं या ऐसे कोई ऐसे सुखी हैं या नहीं? ऐसा शिष्य पूछता है। कोई सुखी है या नहीं? सब दु:खी ही हैं? **सभी संसारी तो विपत्तिवाले नहीं हैं, बहुत से सम्पत्तिवाले भी दिखने में आते हैं।** ऐ... पोपटभाई! तुम सर्वत्र दु:ख.. दु:ख.. दु:ख.. आपदा.. आपदा.. आपदा.. करते हो परन्तु कितने ही तो ऐसे होते हैं कि पूरी जिन्दगी आपदा नहीं होती। समझ में आया? और स्त्री, पुत्र, परिवार सोचा (हो), कोई हुकम करे, वहाँ एक बोले तो पच्चीस हाजिर।

मुमुक्षु : पुण्यानुबन्धी पुण्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्यानुबन्धी पुण्य मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। कहते हैं कि कोई **विपत्तिवाले नहीं हैं, बहुत से सम्पत्तिवाले भी दिखने में आते हैं। इसके विषय में आचार्य कहते हैं -**

दुरर्ज्येनाऽसुरक्षेण नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जन: कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिषा।।१३।।

अर्थ - जैसे कोई ज्वरवाला प्राणी.. बुखार आया, बुखार। वह **घी को खाकर..** देखो! बुखार ऐसा आया हो न काला, कालिया बुखार नहीं कहते? कालिया बुखार, क्या कहते हैं उसे? काला ज्वर। धम.. धम.. धम.. एक और छह-छह, सात-सात डिग्री। ऐसे धाणी फूटते वैसा ऐसा गरम हो, ऐसा गरम होता है। कालिया ज्वर, वह घी को खाकर फिर ऐसा, ऐसा लगे, अरे! घी लाओ। ताजा घी लाओ। आहाहा! खावे या चुपड़े। ऊपर घी चुपड़े। अरे! मर जाएगा। घी को खाकर **या चिपड़ कर अपने को स्वस्थ मानने लग जाय..** लो, हम सुखी हैं, देखो! घी का चिपड़ा हुआ (खाते हैं)। अब मर जाएगा अभी,

सन्निपात लगेगा अभी। समझ में आया? काला ज्वर, ऊपर से घी खाना और चिपड़ना, वह सन्निपात का लक्षण है। सन्निपात होगा, अभी मर जाएगा।

उसी प्रकार कोई एक मनुष्य मुश्किल से पैदा किये गये.. एक बात। लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र, कठिनाई से कदाचित हुए, ऐसा कहते हैं। अकेला पैसा नहीं, हों! सब। बहुत मेहनत कर-करके मुश्किल से पैसे हुए। वे पुण्य के बिना नहीं होते हैं, हों! मर जाए तो भी (पुण्य के बिना नहीं होते) उसमें लड़का माँगता था। साठ वर्ष में लड़का नहीं था। मेहनत की, मुश्किल से लड़का हुआ। फिर लड़का विवाह नहीं करे। ऐसा लड़का पागल जैसा निकला। पूँजी दो-पाँच, पचास लाख की। जहाँ-तहाँ डाला, पचास हजार देकर स्त्री रखी। एक में से एक कहते हैं कि अपने **मुश्किल से पैदा किये..** ऐसा किया। **तथा जिसकी रक्षा करना कठिन है..** वापस उन्हें रखना कठिन। प्राप्त करना कठिन, रखना कठिन, तो भी नाश हो जाएँगे, कहते हैं। तेरे रखने से रहेंगे? पुण्य चला जाए। तू बैठा हो और वे जाएँगे, या वे बैठे हों और तू जाएगा। परन्तु होता है या नहीं? कैसे होगा? आहाहा!

मुमुक्षु : यह सुनकर कुछ खटका नहीं लगता।

पूज्य गुरुदेवश्री : खटका नहीं लगता। उसका कारण है न कि इसने आत्मा आनन्द है, उस ओर कभी लक्ष्य नहीं किया। इस दुःख को किसके साथ मिलाना? एक अनाज हाथ में हो तो दूसरे के साथ मिलावे कि देखो भाई! यह बाजरा, यह बाजरा। यह मूँग के दाने जैसा है और यह कुछ पोचा है, परन्तु दूसरा बाजरा नजर में पड़ा नहीं। आत्मा में आनन्द है, आत्मा अतीन्द्रिय सच्चिदानन्दस्वरूप है। भान नहीं। आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में आनन्द-अर्थात् क्या? आनन्द तो स्त्री में हो, पुत्र में हो, धूल में हो। सुन न अब मूर्ख। स्त्री में और कहाँ पैसे में, धूल में, बँगले में था? है? आहाहा! लड़का ऐसा हो या तो ऐसा हो और या यह धूल होवे न... देखो न! वह बड़ा नहीं था? एक सरकार, वह राजा, यहाँ लाख की आमदनी घण्टे भर की। कुटुम्बियों ने उड़ा दिया। समाचार-पत्र में आया था न? एक घण्टे की ढाई लाख की आमदनी। इतनी आमदनी। उसका राजा छोटा परन्तु पेट्रोल निकला हुआ। पेट्रोल का कुआँ। एक घण्टे भर की ढाई लाख की (आमदनी)। उसके भाई का लड़का, काका का लड़का होगा, उसने इसे निकाला। उसे डर कि मार डालेगा कभी या मुझे निकालेगा। कुटुम्ब ने एकत्रित होकर निकाला उसे,

निकाल डाला। राज से उठा दिया। वह तो पुण्य बदले तो क्या हो ? चला ही करे। वहाँ कितना पुण्य लेकर आया होगा ? पूर्व का पुण्य कितना होगा इस प्राणी में ? थोड़ा-बहुत दो-पाँच वर्ष रहा, वहाँ फूटा भाग्य।

कहते हैं, अज्ञानी यह मानता है। एक तो कठिनाई से पैदा किये, जिसे रक्षा करना, वह वापस रहना कठिन। पुण्य के बिना रहता नहीं। पुण्य फिरे तो चला जाता है। होने पर भी चला जाए, गरीब हो जाए। हाय.. हाय..! नहीं कहा था जयपुर का ? मावजीभाई, मावजी। मावजीभाई जवेरी, हों! अपने बांकानेर का वहाँ जयपुर में था। हम (संवत्) २०१३ में गये थे न! हम नीचे उतरे वहाँ एक व्यक्ति चलता था। मेरी नजर उस पर गयी। सत्तर-पिचहत्तर वर्ष की उम्र और गंज थी। अर्थात् यह मूढ़ गरीब व्यक्ति नहीं लगता, ऐसा लगा, मेरी नजर पड़ी इसलिए। यह मूल गरीब नहीं है। गरीब की शक्ल नहीं है इसकी। यह कौन है कहा ७५ वर्ष का ? इसलिए उसका ड्राइवर कहे कि यह मावजी, यहाँ जवेरी था। उसका लड़का है। मावजी विक्रम। जवेरी बाजार में जवेरी की दुकान थी, उसका लड़का है। महेन्द्रभाई! साथ में बैठे थे। महेन्द्रभाई जयपुर के। अरे! यह तो हमारा मावजी का लड़का। मैंने तो छोटी उम्र में बहुत पैसा दिया था। बीच की उम्र में दु:खी था। पिचहत्तर वर्ष और पैर पुराने जूते ऐसे। ऐ बापू! एक पैसा देना, एक पैसा देना, पैसा देना - ऐसा माँगता था। जवेरी का लड़का। घड़ीक में बदलते समय लगता है। मानता है, मानो कि हमारी (चीज़ है)। तेरी चीज़ कहाँ थी, वह तेरे पास रहे ? क्षण में भिखारी। माँगे तो ऐसे देखा हो... ललाट चमकदार बहुत ऊँचा, ऐसे गृहस्थ के घर में अवतरित हुआ परन्तु बाद में हो गया गरीब, कुछ रहा नहीं। दिया कितना पहुँचे ? अन्त में भिखारी हो गया, लो! आहाहा!

तुम्हारे बापूजी जेठाभाई एक बार कहते थे कि मुम्बई में किसी का विवाह हुआ था। विवाह में बेहड़ा (कलश) का वितरण किया तब, पहले की बात है, हों! कलश का वितरण, उस बहू को अगहरणी आयी। इसके बापूजी थे, बाबूभाई के, जेठालाल संघवी। वे कहते थे कि मेरे पास आया था कि घर में स्त्री को ऐसा है और हॉस्पीटल में ले जाते हैं तो यह हो ऐसा है, कुछ साधन नहीं है, कुछ दो, परन्तु तेरे विवाह में यह था न ? जेठाभाई

कहते थे। जिसके विवाह में कलश दिये थे, पूरी बड़ी जाति को। भाई! यह तो संध्या की लालिमा है। समझ में आया? छाया-धूप, छाया-धूप आवे और जावे, आवे और जावे। वह कहाँ आत्मा नित्य है, उसकी तरह वह चीज़ है। कहते हैं, बाहर की चीज़ें सुखरूप लगती हैं। समझ में आया? परन्तु वह है (नहीं)। उसका एक तो मुश्किल से पैदा करना। मुश्किल अर्थात् पुण्य से होता है परन्तु बाहर में मेहनत करते हैं या नहीं?

जिसकी रक्षा करना कठिन है.. वापिस रखना कठिन है। स्त्री को अधिकार में रखना, पुत्र को आज्ञा में रखना। भारी कठिन। आहाहा! राजा की रानी हो और जमींदारनी तो बोल डाले, पाँच करोड़ का तालुकादार हो। दरबार साहिब! ध्यान रखना, हों! हम जमींदारनी हैं। वह तो सर्पिणी है। हाय.. हाय..! बाहर का सुख देखे और अन्दर वह बोलती हो ऐसा। ध्यान रखना, हम जमींदारनी हैं, दरबारजी! हाँ। इतना कहे, वहाँ उसका रोम चढ़े अन्दर से। हाय..हाय..! यह ऐसा कहे, हम कुछ मुफ्त में नहीं आये।

एक महिला तो और ऐसा कहती थी। समझ में आया? देवरानी-जेठानी दोनों में लड़ाई हुई। जेठानी ऐसे पैसे लेकर आयी होगी, पैसे दिये होंगे पाँच, दस हजार, बीस हजार उसके पिता ने और इसका (देवरानी का) मुफ्त में हुआ होगा। दोनों में हुई लड़ाई। (एक कहे) मुफ्त की (तो यह कहे) मुफ्त की मैं नहीं आयी। मेरे बाप ने पच्चीस हजार लिये हैं। तू मुफ्त में आयी है। देखो! इस मूर्खाई के ये गाँव कहीं अलग होंगे? मुफ्त की मैं नहीं आयी। मेरे बाप ने पच्चीस हजार लिये हैं, तू मुफ्त की है। पोपटभाई! दुनिया में क्या नहीं होगा? दुनिया में क्या नहीं होगा? एक-दूसरी महिलाएँ ताना मारती हो घर में, रसोई के समय देखा हो, दोनों को नहीं बनती, देवरानी-जेठानी को। एक बिच्छू का डंक ऐसा मारे, दूसरी मारे, तीसरी मारे, यह तो चला ही करता है। होली सुलगती (होती है)। फिर कहे, अरे! भाई! अलग होओ न। अब यह होली सुलगी है, इसकी अपेक्षा (तो अलग हो जाओ)। धूल में भी अन्दर सुख नहीं है। अकेले को न हो इसमें, हों! मोहनभाई! अकेले को क्या होगा? अकेला लड़का हो और अकेली बहू हो। यह तो दो-चार लड़के हों, उसे (ऐसा सब होता है)। आहाहा! तो भी कहते हैं कि प्रसन्नता होवे तो ऐसा तो दुःख है उसे, ऐसा कहते हैं। मुश्किल से पैदा करना, रक्षा करना **और फिर भी नष्ट हो जानेवाले**

हैं,.. तो भी रहा रहे नहीं। चले जाते हैं। स्त्री चली जाए, पैसे चले जाएँ, सब चले जाते हैं।

ऐसे धन आदिकों से अपने को सुखी मानने लग जाता है। मूढ़। ऐसे मुश्किल से पैदा करना, रक्षा करना, नाश हो। ऐसे लक्ष्मी, स्त्री, मकान, इज्जत, पुत्र उससे **अपने को सुखी मानने लग जाता है।** ऐसी चीज़ को, हम सुखी हैं, ऐसा मानता है। कहो, बराबर है या नहीं ? फावाभाई ! आहाहा !

हमारे तो लड़का अच्छा है न ! बापू ! तुम्हारे तो पाँच-दस हजार खर्च करना हो तो दिक्कत नहीं। यह तीन लाख, चार लाख में से एक लाख खर्च करूँ तो ? यह बोलना नहीं, बापू ! बहुत नहीं बोलना। यह तो बाप भी चतुर हो कि इतना सब खर्च नहीं करते। परन्तु यह चार लाख पाप करके मैंने एकत्रित किये तो मुझे चौथा भाग तो दान में देने दे। पुण्य हो, धर्म तो कहाँ था उसमें भी ? नहीं, हों ! पूछे बिना बापूजी कुछ नहीं कर डालोगे, हों ! अधिक लोगों में वापस तुम वचन दे दो, फिर हमें तो छिदना पड़े, हों ! आहाहा ! इतना ही कहे। अधिक खर्च नहीं करना। लम्बी रकम एक-दूसरे में बोलने में जाए तो कोई अधिक चढ़ जाएगा रकम में। तुम्हारे अमुक तक बोलना। बस ! फिर अधिक बोलना नहीं। हो गया, लो ! मानो इसका नौकर है, लो ! आहाहा !

विशदार्थ – जैसे कोई एक भोला प्राणी.. साम ज्वर कहा है न ? देखो न ! **जो सामज्वर (ठंड देकर आनेवाले बुखार)..** ठण्ड देकर अर्थात् क्या ? पहले ठण्ड (सर्दी) आती है न ? सर्दी आयी और फिर आवे बुखार। ऐसा आवे। पहले कँपकँपी छूटे न ! पहले आवे न सर्दी ? क्या कहते हैं अपने (गुजराती में) टाढियो आवे। बहुत सर्दी आवे। रजाई ढाँको रे ढाँको रजाई। फिर एकदम हो जाए गर्म.. गर्म.. गर्म.. गर्म.. निकालो-निकालो वस्त्र। **पीड़ित होता है, वह बुद्धि के ठिकाने न रहने से..** बुद्धि का ठिकाना नहीं रहता। **बुद्धि के बिगड़ जाने से घी को खाकर..** घी खाता है। समझ में आया ? **या उसकी मालिश कर लेने से..** घी से मालिश करो। अच्छा-ताजा घी भैंस का और गाय का लेकर मालिश करे। मर जाएगा, उसे घी का मालिश नहीं होता। **अपने आपको स्वस्थ-निरोगी मानने लगता है,..** लो ! हम निरोग-स्वस्थ हैं, ऐसा मानने लगता है।

इसी प्रकार **उसी तरह कोई-कोई (सभी नहीं)..** कोई-कोई जीव **धन, दौलत, स्त्री आदिक जिनका कि उपार्जित करना कठिन..** देखो ! एक तो लक्ष्मी मिलना

मुश्किल। दौलत, दौलत अर्थात् अधिक (धन) आदि। स्त्री, पुत्र, मकान **उपार्जित करना कठिन तथा जो रक्षा करते भी नष्ट हो जानेवाले हैं..** तीन बोल लिये हैं। उपार्जन किया, रखने जाए परन्तु फिर भी नष्ट हो जाते हैं। पुण्य का उदय चला जाए तो सब फू...! एक जिन्दगी में तीन-तीन, चार-चार बार देखा है एक को। तीन-तीन, चार-चार। घड़ीक में गरीब, घड़ीक में पैसा, घड़ीक में गरीब, घड़ीक में पैसा। पश्चात् वृद्धावस्था आवे। अरे रे! यह गरीबी यदि जवानी में आयी होती न, तो सहन होती, अब नहीं होती। ऐसा फिर बोले। धूल में भी नहीं है। सुन न अब! युवा अवस्था में यदि यह आयी होती न, यह, तो सहन करता परन्तु अब यह सहन नहीं होता। बड़ी इज्जत। क्या करना? लड़का-लड़की अच्छी जगह विवाहित, यहाँ घर घिस गया (आर्थिक तंगी हो गयी) अब वे आवें, उन्हें क्या देना? क्या करना? उलझन का पार नहीं होता। न्यालभाई! आहाहा!

ऐसे इष्ट वस्तुओं में अपने आपको 'मैं सुखी हूँ'.. देखो! ऐसी इष्ट वस्तुओं में अपने आपको मैं सुखी हूँ, अपने आप मुफ्त में मानता है। मूढ़। सुखी.. सुखी.. सुखी.. स्त्री है, पुत्र है, सब है। आज्ञाकारी लड़के, वे कहीं अपना कभी वचन तोड़ें, ऐसा है कुछ? पोपटभाई! छह-छह लड़के, स्त्रियाँ। ऐसे वे बापूजी-बापूजी करे और पाँच-पाँच, पच्चीस लाख रुपया, अब उसे दुःखी कैसे कहना? कहते हैं।

मुमुक्षु : दुःखी भी नहीं और सुखी भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; वह दुःखी है। सुखी किसका? कौन कहता है सुखी? आहाहा! दस-दस लाख का बँगला, देखो न! गोवा में तुम्हारा शान्तिलाल। इसके मामा का लड़का खुशाल, शान्तिलाल खुशाल। चालीस करोड़! इसके मामा के लड़के को दस -दस लाख के बँगले हैं। धूल में भी नहीं। वहाँ होली है। लड़के ऐसे हैं और ऐसा है और धूल ऐसी है और ये रुपये डालना कहाँ? करना क्या? होली.. होली सुलगती है परन्तु मूढ़ मानता है कि अपने जैसे कोई सुखी नहीं है। मेरे घर में तो बादशाही है। मिथ्यात्व भ्रमणा (है)।

आत्मा में आनन्द है, उसकी श्रद्धा की खबर नहीं होती। आत्मा की शान्ति का स्वभाव तो आत्मा में ही है, उसकी श्रद्धा और उसका विश्वास नहीं और इन चीज़ों में इसे विश्वास है। अपना विश्वास नहीं और इन चीज़ों का विश्वास। कहो, यह सुख.. यह

सुख.. यह सुख.. यह सुख.. कितना सुख का साधन ? तू सुखी है या नहीं अकेला ? नहीं, यह मैं नहीं। यह सुख... यह सुख.. यह सुख.. तुझे सुख के साधन तो बहुत हैं तुझे, पार नहीं होता। तुझमें सुख है या नहीं ? कि मैं नहीं। मैं सुख से खाली। यही यहाँ कहते हैं, मूढ़! तुझमें सुख है, तुझे भान नहीं है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना, तुझे आत्मा में आनन्द का स्वभाव अन्तर में है, उसकी तुझे खबर बिना यह सुख... यह सुख.. सबमें मानता है, वे सब दुःख के निमित्त, उन्हें तू सुख मानता है। यह तूने भ्रमणा खड़ी की है। भ्रमणा ही भव का कारण है। समझ में आया ?

ऐसा मानने लग जाते हैं,.. हम सुखी हैं, भाई! सुख अच्छा है, मुझे बादशाही है। **इसलिए समझो कि जो मुश्किलों से पैदा किये जाते तथा जिनकी रक्षा बड़ी कठिनाई से होती है, तथा जो नष्ट हो जाते,..** रक्षा करते-करते भी नहीं रहते। **स्थिर नहीं रहते..** अर्थात् शाश्वत् नहीं रहते। लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र शाश्वत रहते हैं ? भगवान आत्मा शाश्वत रहनेवाला अन्दर नित्यानन्द प्रभु है। **ऐसे धनादिकों से दुःख ही होता है,..** उस धन में कुछ है नहीं। लो! **जैसा कि कहा है – 'अर्थस्योपार्जने दुःखं'**

धन के कमाने में दुःख,.. दुःख होगा ? अरे! राग है न, वहाँ आकुलता ? ऐसा करना और इसे सम्हालो और इसे सम्हालो... उसमें अभी का क्या कहलाता है तुम्हारे पैसा ? इनकम टैक्स और होली की बात कितनी सुलगी है! दस लाख पैदा हो तो बताना किस प्रकार ? दस लाख हो और चौरासी हजार ले जाए लाख में। वह बहियाँ बदलनी पड़े या दस-पन्द्रह नाम डालकर भाग करने पड़ें। आहाहा!

उसकी रक्षा करने में दुःख, उसके जाने में दुःख,.. लो! वह जाए तो दुःख। **इस तरह हर हालत में दुःख के कारणरूप धन को धिक्कार हो।** यहाँ तो कहते हैं। ऐसी लक्ष्मी को धिक्कार हो। आत्मा के आनन्द में है, उसे कहते हैं कि प्रशंसा कर। आत्मा आनन्दमूर्ति है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान कर। इसके अतिरिक्त सब धिक्कार-धिक्कार है। इस पैसे को धिक्कार है, मोहनभाई! लक्ष्मी तो तेरी तुझमें है, भाई! सच्चिदानन्द प्रभु की पहिचान कर, श्रद्धा कर। वहाँ धर्म और शान्ति और वहाँ सुख है, बाकी कहीं सुख नहीं है।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)